■ उदारीकरण कुचक्र

विकास का ढपोरशंखी राग खत्म होती नौकरियां तबाह होता छात्रों-नौजवानों का भविष्य

प्रदीप

एक दशक पूर्व जब नरसिंह राव-मनमोहन सिंह की कांग्रेसी सरकार ने नयी आर्थिक नीतियां की घोषणा की थी तो सब्ज़बाग कुछ यूं दिखाये थे गोया इन नीतियों के अमल की देर है, बस दुख के दिन बीते ही समझो। चारों ओर समृद्धि की फसल लहलहायेगी। देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से गले मिलने भर की देर है, खुशियों का सागर हिलोरें लेने लगेगा।

लेकिन अब जबकि केन्द्र में कांग्रेस, संयुक्त मोर्चा से होते हुए स्वदेशी का पताका फहराने वाली भाजपा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन तक "उदारीकरण", निजीकरण ने एक दशक का सफर पूरा कर लिया है, आज विकास का सब्ज़बाग तबाही के अनन्त रेगिस्तान के रूप में हमारे सामने पसर चुका है। विकास के ढपोरशंखी राग की पोल खुल चुकी। लोकलुभावन नारों से कुछ समय तक दिग्भ्रमित हो गये मध्यवर्ग की आंखें भी खुलती जा रही हैं।

पहले सब्ज़बाग अब बेहया नसीहतें मक्कार जुमलेबाजियां

दस वर्षों में "उदारीकरण", निजीकरण की सच्चाई इतने नंगे रूप में सामने आयी है कि सरकारी नुमाइन्दे अब सब्ज़बाग दिखाने के काबिल ही नहीं रहे। सत्ता सम्हालते समय जो प्रधानमंत्री हर साल एक करोड़ रोजगार देने का वायदा कर रहा था, तीन साल बाद वह बेहया नसीहतें देने पर उतर आया है। पिछले दिनों अटल बिहारी वाजपेयी ने फरमाया कि *"वर्ष 2004 तक सरकारी कर्मचारियों की संख्या में दस प्रतिशत कटौती की जायेगी। .. नौजवान सरकारी नौकरियों की उम्मीद छोड़ दें। रोजगार के लिए वे या तो निजी क्षेत्र का दरवाजा खटखटायें या खुद का अपना उद्यम शुरू करें"* जाहिर है कि प्रधानमंत्री महोदय अपने वायदे से साफ मुकर चुके हैं।

इतना ही नहीं, प्रधानमंत्री महोदय एक तरफ नौजवानों को ये नसीहतें दे रहें हैं, दूसरी ओर "सुधारों" के दूसरे चरण की कमान अपने हाथ में लेकर छंटनी-तालाबन्दी के लिए पूंजीपतियों के रास्ते साफ करते हुए मक्कारी भरी जुमलेबाजियां कर रहे हैं। पिछले दिनों राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक को सम्बोधित करते हुए उन्होंने फरमाया कि श्रम सुधारों से रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। यानी, जब पूंजीपतियों को मनचाहे ढंग से कारखाने बन्द करने, और मर्जी के मुताबिक मज़दूरों को काम पर रखने या निकाल बाहर करने का अधिकार मिल जायेगा तो इससे रोजगार के अवसर बढ़ेंगे।

बहरहाल, प्रधानमंत्री तो बातों को घुमाने की कला में माहिर हैं। यूं भी बातों को घुमाने की कला तो हमारे लोकतंत्र में एक खूबी मानी जाती है। उन्हें जमीनी सच्चाइयों से या बेरोजगार लोगों की पीड़ा से क्या लेना-देना। सरकार का ही आर्थिक सर्वेक्षण-2001 कहता है कि 1997 के मुकाबले 2000-2001 तक 1,44000 सरकारी नौकरियां और निजी क्षेत्र की 50,000 नौकरियां खत्म की जा चुकी हैं, तो भला नौजवान निजी क्षेत्र में रोजगार के लिए दरवाजा खटखटाने कहां जायें। रही बात खुद के उद्यम की तो "उदारीकरण", निजीकरण की इन्हीं नीतियों की बदौलत देश में 3,06,221 छोटे उद्योगों पर ताले लटक चुके हैं। प्रधानमंत्री की नसीहत मानकर अगर कोई नौजवान कर्ज-वर्ज का जुगाड़ कर कोई छोटा निजी उद्यम खोले भी तो उसे देशी-विदेशी दैत्याकार कम्पनियां नहीं निगल जायेंगी, इसकी क्या गारंटी है। वह भी तब जब छोटे उद्योगों के लिए आरक्षित क्षेत्र को बड़े उद्योगों के लिए खुला कर दिया गया है।

दूसरे, जिस सूचना प्रौद्योगिकी और उसमें रोजगार की सम्भावनाओं का डंका बजाया जा रहा है, क्या उसका सारा तामझाम सिर्फ महानगरों तक ही सिमटा हुआ नहीं है? क्या गांवों और शहरों के ग़रीब व निम्न मध्यम और औसत मध्यम वर्ग के नौजवानों तक उस सूचना-प्रौद्योगिकी के इस तंत्र की पहुंच हो पायेगी, जिसके प्रशिक्षण में ही हज़ारों रुपये गलाने पड़ते हैं। वैसे आजकल सूचना प्रौद्योगिकी का गुब्बारा भी पिचका हुआ है। इस क्षेत्र में छायी विश्वव्यापी मंदी छंटने के आसार दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रहे हैं। ऐसे में प्रधानमंत्री

तालिका – एक: केन्द्र व राज्य सरकारों तथा स्थानीय निकायों में रोजगार वृद्धि दर

वर्ष	केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध रोजगार %	राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध रोजगार %	स्थानीय निकायों द्वारा उपलब्ध रोजगार %
1981-91	0.7	2.3	1.3
1991-98	–0.6	0.6	–0.3

स्रोत: श्रम मंत्रालय, भारत सरकार

की नसीहतें एक अश्लील गाली लगती है।

सरकारी आंकड़ों से भी झलकता बेरोजगारी का अनन्त रेगिस्तान

पिछले दस वर्षों में बेरोजगारी किस हद तक बढ़ी है इसे जानने के लिए दर-बदर भटकती युवा पीढ़ी की आंखों को पढ़ने की जरूरत है। लेकिन ठंडे-बेजान सरकारी आंकड़े भी सच्चाई का बयान करने से बच नहीं पाते।

1981 में कुल रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या लगभग 185 लाख थी जो 1991 तक किसी तरह190.6 लाख तक पहुंची। यानी, 1981-91 के दशक में सरकारी क्षेत्र में रोजगार की औसत वार्षिक वृद्धि दर मामूली ही सही पर 2.1 प्रतिशत थी। लेकिन, नयी आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद सरकारी रोजगार 1998 में सिर्फ 194.2 लाख रह गया। इस प्रकार इस दौरान सरकारी क्षेत्र में रोजगार वृद्धि की दर सिर्फ 0.2 प्रतिशत रह गयी।

अब केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय निकायों की नौकरियों में अलग-अलग रोजगार की स्थितियों पर नज़र दौड़ाएं।

कुल सरकारी रोजगार में केन्द्र सरकार का हिस्सा जो 1981 में 20.6 प्रतिशत था वह कम होकर 1991 में 17.9 प्रतिशत रह गया और फिर 1998 में सिर्फ 16.8 प्रतिशत रह गया। अगर केन्द्र सरकार के रोजगार में "सुधारों" के पहले और बाद की स्थिति पर नज़र दौड़ाएं तो साफ दिखेगा कि "सुधारों" के बाद के दौर में वृद्धि दर ऋणात्मक पहुंच गयी है (देखें - तालिका-एक)। 1981-91 के दौरान केन्द्र सरकार के रोजगारों में जो वृद्धि दर 0.7 थी वह 1991-98 के दौरान घटकर 0.6 रह गयी।

राज्य सरकारों के रोजगार में भी वृद्धि दर की यही रुझान है। इनके द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाले रोजगार की वृद्धि दर 1981-91 के दौरान 2.3 प्रतिशत थी जो "सुधारों" के दौर में घटकर औसतन सिर्फ 0.6 प्रतिशत रह गयी। अर्द्धसरकारी संस्थानों में उपलब्ध रोजगार की संख्या 1981 में 45.8 लाख थी। 1991 के बाद इनकी वृद्धि दर में भी कमी आयी और 1998 तक पहुंचने पर यह संख्या सिर्फ 64.8 लाख तक पहुंची यानी सिर्फ 0.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर।

स्थानीय निकायों में भी रोजगार वृद्धि दर "सुधारों" के दौर में ऋणात्मक पहुंच गयी। इनमें कुल रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या 1981 में 20.4 लाख थी जो बढ़कर 1991 में 23.1 लाख तक पहुंची थी, परन्तु "सुधारों" के बाद यह गिरकर 22.5 लाख पर पहुंच गयी। साफ है कि जो रोजगार वृद्धि दर 1981-91 के दारान 1.3 प्रतिशत थी वह 1991-98 के दौरान नकारात्मक होकर 0.3 प्रतिशत पर लुढ़क गयी। (देखें तालिका- एक व दो)।

तालिका – दो: सरकारी अर्द्धसरकारी क्षेत्रों में रोजगार उपलब्धता (लाख में)

वर्ष	केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध	राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध	अर्द्धसरकारी क्षेत्रों द्वारा उपलब्ध	स्थानीय निकायों में द्वारा उपलब्ध
1991	34.10	71.12	62.22	23.13
1995	33.95	73.55	65.20	21.97
1998	32.53	74.58	64.61	22.46

स्रोत: श्रम मंत्रालय, भारत सरकार

अगर संगठित क्षेत्र और असंगठित क्षेत्र के आधार पर रोजगार की स्थिति का आकलन करें तो भी यही तस्वीर नज़र आती है (देखें – तालिका-तीन)। "सुधारों" के पहले संगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर 1.73 प्रतिशत थी जो "सुधारों" के लागू होने के बाद 0.6 प्रतिशत रह गयी। यही हाल असंगठित क्षेत्र का भी है। पहले यह 2.41 प्रतिशत थी बाद में घटकर 1.1 प्रतिशत रह गयी। यहीं प्रधानमंत्री के इस सफेद झूठ की पोलपट्टी भी खुल जाती है कि "सुधारों" से असंगठित क्षेत्र में रोजगार बढ़ेंगे।

सरकारी खर्चों में कटौती के नाम पर वर्ष 2004 तक सरकारी नौकरियों में जो दस प्रतिशत कटौती की बात की जा रही है, उसकी असलियत भी गौर करने लायक है। सरकारी अर्थशास्त्रियों का ही कहना है कि हर साल दो प्रतिशत की दर से सरकारी कर्मचारियों की छंटनी से हर वर्ष सरकारी व्यय में सिर्फ हर साल सिर्फ 0.8 प्रतिशत ही कमी हो पायेगी। इस दर से पांच वर्षों में सरकारी व्यय में कुल सिर्फ 0.4 प्रतिशत की ही कमी हो पायेगी जो ऊंट के मुंह में जीरे के समान भी नहीं है। जाहिर है यह कटौती सरकार सिर्फ इसलिए कर रही है जिससे भारी-भरकम नौकरशाही और अन्य अनुत्पादक सरकारी खर्चों के लिए जितना भी सम्भव हो रकम बचायी जा सके।

जिनका भविष्य तबाह हो रहा है वही इस व्यवस्था को तबाह करेंगे

सरकारी आंकड़े खुद यह गवाही दे रहे हैं कि हालात कितने विस्फोटक होते जा रहे हैं। आज स्नातक स्तर पर पढ़े-लिखे दस छात्रों में से सिर्फ एक को रोजगार मिल पा रहा है। देश की कुल श्रमशक्ति के एक तिहाई से भी ज्यादा आबादी खाली हाथ बैठी। अगर अर्द्धबेरोजगारी या छिपी बेरोजगारी भी इसमें जोड़ दें तो देश की लगभग आधी आबादी खाली हाथ बैठी है। लेकिन, यह आबादी क्या सिर्फ हाथ पर हाथ धरे अपनी तबाही-बर्बादी का चुपचाप तमाशा देखती रहेगी? नहीं, कतई नहीं।

शासक वर्ग तो उसी राह पर चलते रहेंगे, जिस पर वे चलते आ रहे हैं। वे पीछे नहीं हटेंगे। लेकिन, करोड़ों-करोड़ लोग वहीं नहीं बैठे रहेंगे जहां वे हैं। "सुधारों" के थपेड़े उन्हें तेजी से यह सिखाते जा रहे हैं कि अगर भविष्य के अंधेरे से उन्हें निजात पानी है तो उन्हें उठ खड़े होना होगा। मुनाफे की लूट पर टिकी जो व्यवस्था उनके भविष्य का रास्ता रोके खड़ी है, उसका चेहरा धीरे-धीरे उन्हें साफ नज़र आता जा रहा है। इसलिए, उनकी बेचैनी भी बढ़ती जा रही है, गुस्सा भी बेकाबू होता जा रहा है। भविष्य के प्रति गहन निराशा की जो मन:स्थिति कहीं-कहीं आत्मघाती कदमों

तालिका – तीन: संगठित व असंगठित क्षेत्र में रोजगार वृद्धि दर (प्रतिशत में)

वर्ष	संगठित क्षेत्र	संगठित क्षेत्र
1981-91	1.73	2.41
1991-98	0.6	1.1

स्रोत: श्रम मंत्रालय, भारत सरकार

(शेष पृष्ठ 34 पर)

इतिहास से भयाक्रान्त...

(पृष्ठ 11 का शेष)

उनके स्थान पर अर्जुन देव थे। वह कहते हैं कि कुत्वत उल इस्लाम के सामने एक सूचना पट्ट पर वह तथ्य लिखा हुआ है जिसे दीक्षित महोदय राष्ट्र को बताना चाहते हैं, उसे किताब में लिखने की आवश्यकता नहीं है। अर्जुन देव ने चिंता व्यक्त की है और कहा है कि इतिहास को साम्प्रदायिकता और मिथकों के अधीन करने का षडयंत्र किया जा रहा है।

जिन पुस्तकों को हटाए जाने का प्रस्ताव है वे हैं **विपन चंद्रा** के *आधुनिक भारत*, **रोमिला थापर** की प्राचीन और मध्य भारत पर पाठ्य पुस्तकें और सतीश चंद्रा की *मध्य भारत*। **रोमिला थापर** कहती हैं: "अगर आप पुस्तकों में संशोधन करना चाहते हैं तो सक्षम इतिहासकारों को ऐसा करने दें। क्या उन्होंने कोई कमेटी बनाई है और क्या उस कमेटी ने इन पाठ्य पुस्तकों के वापस लिए जाने को मान्यता दी है? हम जानना चाहते हैं कि वे विशेषज्ञ कौन हैं और किस आधार पर उन्होंने इन पुस्तकों से पीछा छुड़ाने का निर्णय लिया है। यह कहना कि कोई वैचारिक प्रेरणा नहीं, सही नहीं होगा।" उन्होंने मांग की कि एन.सी. ई.आर.टी. उन एक्सपर्टों की लिस्ट को सार्वजनिक करे जिन्हें पाठ्यक्रम की रूपरेखा बनाने के लिए उसने लगाया है। **प्रो. थापर** ने कहा, "वे जानते हैं कि अगर वे इतिहास को आर.एस.एस. के दृष्टिकोण से नहीं लिखेंगे तो उसे खारिज कर दिया जाएगा। इतिहास का उन्मूलन करने के पीछे एक यह वजह है। .. ये पाठ्य पुस्तकें आदर्श पाठ्य-पुस्तकें थीं और समझ यह थी कि यदि राज्य को उनमें कोई बदलाव करना था तो लेखकों के नाम हटा दिए जाएंगे। ... " हम मार्क्सवादी साहित्य नहीं लिख रहे थे। हम सामाजिक और आर्थिक इतिहास के कुछ विचारों को प्रतिबिम्बित करने की कोशिश कर रहे थे। लक्ष्य था स्तरीय सूचना देना।"

मध्य भारत के प्रतिष्ठित इतिहासकार **प्रो सतीश चंद्रा** आश्चर्य प्रकट करते हैं: "इतिहास तथ्यों के आधार पर लिखा जाना चाहिए या समुदायों की अति भावुकता को ध्यान में रखकर।"

अर्जुन देव ने बताया है कि प्रसिद्ध समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह, भू शास्त्री एजाजुद्दीन अहमद, जिन्होंने बारहवीं की भूगोल की पुस्तक लिखी है, समेत रोमिला थापर, डी.एन.झा, के.एम.श्रीमाली, सतीश चंद्रा जैसे विश्व प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित इतिहासकारों को इस विषय से सम्बद्ध विशेषज्ञों की टीम से हटा दिया गया है।

जो कुछ होने जा रहा है उसकी भयंकरता का एहसास शायद अभी हमें ठीक से नहीं हो पा रहा है। अगर सभी इंसाफपसंद, संजीदा, तर्कपरक और साम्प्रदायिकता-विरोधी छात्र और शिक्षक एकजुट होकर इस भगवा साजिश के खिलाफ संघर्ष नहीं करेंगे तो हमें यह जान लेना चाहिए कि आने वाली सम्पूर्ण पीढ़ी इतिहास की एक विकृत, तोड़ी-मरोड़ी गयी तस्वीर से परिचित होगी। और कहना न होगा कि विकृत इतिहास बोध से सम्पन्न नयी पीढ़ी स्वस्थ मानवीय समाज की वाहक नहीं बन सकती।

...तबाह होता छात्रों-नौजवानों का भविष्य

(पृष्ठ 15 का शेष)

की दिशा में उठती हुई दिख रही, वही शासकों और उनकी व्यवस्था के लिए मरणान्तक होने जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं होना चाहिए। इतिहास का सबक यही है।

जिन करोड़ों नौजवानों के सपने बदरंग हो रहे हैं, आकांक्षाएं धूल-धूसरित हो रही हैं, वे बहुत दिनों तक चुपचाप नहीं बैठेंगे। उनके भीतर सुलग रहा आक्रोश का लावा मुहाने तलाश रहा है और उन्हें वह मुहाना भी देर-सवेर मिल ही जायेगा। क्योंकि यह भी इतिहास का सबक है कि ऐसे ही दौरों में मेहनतकश अवाम के वे बहादुर बेटे-बेटियां आगे आ जाते हैं जो सबसे अधिक संवेदनशील होते हैं, बगावत का जज्बा जिनके अन्दर हिलोरें ले रहा होता है। सबसे पहले ये नौजवान भगतसिंह का यह आह्वान सुनेंगे, फिर समूची युवा आबादी को यह साफ-साफ सुनायी देगी: **"अगर कोई सरकार जनता को उसके बुनियादी अधिकारों से वंचित रखती है तो उस देश के नौजवानों का यह अधिकार ही नहीं कर्तव्य बन जाता है कि ऐसी सरकार को उखाड़ फेंके या तबाह कर दें।"**

अमेरिकी सत्ताधारियों के हाथ...

(पृष्ठ 9 का शेष)

आतंकवाद को कुचलने के नाम पर जालिम राज्यसत्ताएं सिर्फ यही कर सकती हैं कि व्यापक आबादी को दमन का निशाना बनायें और ऐसा करते हुए वे जनक्रांति को आमंत्रण देने का काम करती हैं।

आतंकवाद विश्व इतिहास की महज एक संक्रमणकालीन परिघटना है। हाल की घटनाओं का एक निहितार्थ यह भी है कि इसी संक्रमण के दौरान भविष्य के रास्ते का नक्शा बनेगा और वित्तीय पूंजी के विनाशकारी विश्व वर्चस्व के विरुद्ध नयी जनक्रान्तियों की रूपरेखा तय होगी। तब तक, जिन आततायी सत्ताओं ने अतीत की जनक्रान्तियों को खून की नदी में

प्रायः जनक्रान्तियां जब पराजित होती हैं, जब गतिरोध और उलटाव के दौर आते हैं, तो जनता में व्याप्त गहरी निराशा की जमीन से, मध्य वर्ग के बीच से ऐसी ताकतें पैदा होती है। इतिहास के रंगमंच पर जब जनक्रान्तियों के वास्तविक नायक नहीं होते तो उन लोगों को भी उत्पीड़ित जनता अपना नायक मान लेती है जो आत्मघाती हदों तक बहादुराना कारनामों द्वारा अन्यायी सत्ता को चुनौती देते हैं।

डुबो दिया और जनता के स्वप्नों, आकांक्षाओं और उपलब्धियों को राख की मोटी परत के नीचे दबा दिया, उन्हें आतंकवादी कहर का कोप भुगतना ही होगा। यह उन्हीं का पाप है। उन्हें ही भुगतना है।

यह त्रासद है कि अमेरिकी शासक वर्ग के साथ ही अमेरिकी जनता को भी काफी विनाश झेलना पड़ रहा है। ऐसा उसने इतिहास में कभी नहीं झेला था। पर्ल हार्बर का विनाश भी इससे छोटा था और वह किसी आतंकवादी ग्रुप ने नहीं, बल्कि एक अन्य साम्राज्यवादी शक्ति ने किया था। लेकिन गौरतलब बात यह है कि इस बार के विनाश के बाद अमेरिका के भीतर भी जनमत अमेरिकी नीतियों को इसके लिए जिम्मेदार मान रहा है और अंधराष्ट्रभक्ति की भावनाओं में बहने के बजाय उन नीतियों को बदलने की मांग करता दीख रहा है। इस रुझान में भविष्य के कुछ महत्वपूर्ण संकेत छिपे हैं।

18 सितम्बर 2001